लोकसाहित्य

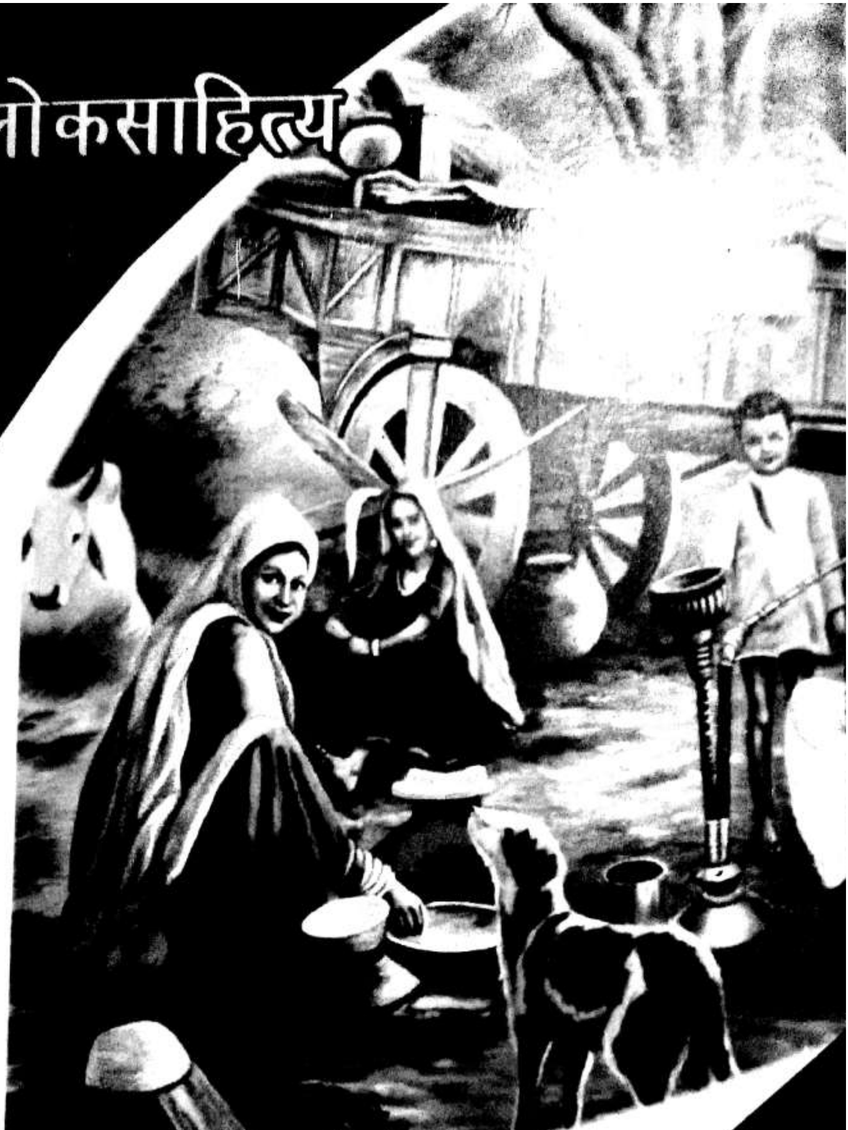

संपादक
डॉ. गणपत राठोड
सह संपादक
डॉ. राम बडे

Scanned by CamScanner

ISBN 978-93-83672-48-6

- लोकसाहित्य
- संपादक :- डॉ. गणपत राठोड

  सहसंपादक :- डॉ. राम बडे

  मार्गदर्शक :- डॉ. सुरेश खुरसाले

  प्राचार्य डॉ. प्रविण भोसले

© प्राचार्य

स्वामी रामानंद तीर्थ महाविद्यालय, अंबाजोगाई ,जि. बीड

- प्रकाशक

  शौर्य पब्लिकेशन

  कपिल नगर, लातूर, जि. लातूर- 413531.

  मो.नं. 8149668999, 8483959442
- शब्द सज्जा

  श्री. गोदाम अरुण

  8149668999, 8483959442
- मुखपृष्ठ

  श्री. गोदाम अरुण

  8149668999, 8483959442
- मुद्रक

  आर.आर. प्रिंटर्स , एम.आय.डी.सी. लातूर - 413512
- प्रथम संस्करण

  मार्च 2017
- मुल्य - 250 /-

नोट :- प्रकाशित रचनाओं के विचार से स्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नही।

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

खंड 'अ' - लोकसाहित्य

1	लोक साहित्य और समाज : दशा और दिशाएँ	डॉ. भालेराव वी.के.	13
2	लोकसाहित्य : संकल्पना एवं स्वरूप	डॉ. कैप्ट. बाबासाहेब माने	16
3	लोकसाहित्य और समाज	प्रा. डॉ. हाके महावीर रामजी	23
4	लोक-साहित्य : अवधारणा एवं महत्त्व	कुलकर्णी कृष्णकुमार बालासाहेब	27
5	लोकसाहित्य : अवधारणा और स्वरूप	प्रा. डॉ. गाडे ज्ञानेश्वर गंगाधरराव	32
6	लोकसाहित्य का महत्व	डॉ. प्रमोद पडवळ	36
7-	लोकसाहित्य और समाज : दशा और दिशाएँ	डॉ.मालती डी.शिंदे (चव्हाण)	40
8	मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबूतरी' : में लोक जीवन का यथार्थ चित्रण	साळवे सतीश मधुकर	43
9	"लोकसाहित्य की अवधारणा एवं महत्त्व"	प्रा.डॉ.ए.जे.बेवले	47
10	गोड जनजाति का लोकसाहित्य और जीवन	गिन्हे दिलीप लक्ष्मण	52
11	लोक-साहित्य का महत्त्व	लोहकरे किशोर बळीराम	55
12	भोजपुरी लोकसाहित्य और नारी	डॉ.शिवाजी वडचकर	58
13	भारतीय लोक साहित्य और वर्तमान परिदृश्य	डॉ. बी. आर.नले	63
14	लोक साहित्य का बदलता परिदृश्य	डॉ. शाम सानप	67
15	लोकसाहित्य का महत्व और विशेषताएँ	डॉ.बळीराम भुक्तरे	70
16	लोकसाहित्य और समाज	शेख जावेद रहेमान	74
17	लोक साहित्य का महत्व	साकोळे दत्ता शिवराव	76
18	लोक साहित्य एक सांस्कृतिक अध्ययन	प्रा. राम दगडू खलंग्रे	80
19	लोकसाहित्य की अवधारणा	प्रा.श्रीमंडळे वैशाली शिवाजीराव	85
20	लोकसाहित्य का स्वरूप	डॉ. बंग नरसिंगदास ओमप्रकाश	87
21	लोकसाहित्य की अवधारणा	गुरुदिपीकौर गुरुमेलसिंग गुंडू	91
22	लोकसाहित्य की अवधारणा	प्रा. श्री खरटमोल मेघराज	94
23	लोकसाहित्य की अवधारणा	वडवराव विजय नागनाथ	98
24	"भारतीय संस्कृति का सफल वाहक है लोक साहित्य"	रमेश बबनराव तिडके	102
25	लोक साहित्य की अवधारणा	बिरादार राजकुमार अर्जुनराव	105
26	लोकसाहित्य का महत्व	डॉ. प्रमोद पडवळ	108
27	लोकसाहित्य और समाज	गीता मनोहरराव नागरगोजे	112

खंड 'ब' - लोकगीत और समाज

१	लोकगीतों में नारी	डॉ. अमर ज्योति	115
२	लोकगीत और समाज	डॉ. रमेश कुमार	119

Scanned by CamScanner

लोकसाहित्य : संकल्पना एवं स्वरूप

डॉ. कॅप्ट. बाबासाहेब माने

2

अनादिकाल से भारतीय जनमानस में खासतौर पर आदिवासी, वनवासी, पहाडी, घूमंतु, अशिक्षित, अपरिष्कृत, नगरीय सभ्यता से दूर, प्रकृतिगत जीवन जीने वाली जनजातियों में लोकसाहित्य की परंपरा अनेक उतार-चढसओं के साथ प्रवाहित होती रही है। लोकसाहित्य आदिमयुग से उपेक्षित एवं पीछडी जनजातियों के जीवन यापन एवं जीवन संचलन का प्रमुख साधन रहा है। लोकसाहित्य की परंपरा भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर है; जो युगों से चली आ रही है । परंतु आज यह परंपरा वर्तमान जीवन पद्धति के चलते लुप्तप्राय: हो रही है। फिर भी भील, भूंजिया, भाट, गोंड, कोकणा, कोलाम, कोल्हाटी, नंदी बैलवाले, वासुदेव, पोतराज, डोंबारी आदि कई जनजातियों के द्वारा इस परंपरा का जतन बडी सादगी से किया जा रहा है। लोकसाहित्य का निर्माण वैदिकपूर्व युग से लेकर वैदिकयुग, रामायण-महाभारत काल, पुराणकाल, मध्ययुग आदि युगों में होता रहा है । लोकसाहित्य और लोकजीवन तथा लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति का अटूट संबंध है। चूँकि लोकजीवन से ही लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है और लोकसाहित्य के द्वारा लोकजीवन का संचलन होता रहा है । उसे आकार मिलता रहा है । लोकसाहित्य एवं लोकजीवन से ही लोकसंस्कृति का निर्माण भी हुआ है । अत: इन्हें एक-दूसरे से परस्पर अलग नहीं किया जा सकता । 'लोकसाहित्य' को कई विद्वान सीमित दायरे में देखते हैं । उनके विचारों से लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथा तथा लोकनृत्य आदि घटक ही लोकसाहित्य के अंतर्गत आते हैं । परंतु ऐसा नहीं है 'लोकसाहित्य' अपने आप में अधिक व्यापक, विशाल एवं विस्तृत है। इसमें लोक जीवन की भिन्न-भिन्न बातों एवं क्रियाकलापों का सन्निवेश होता है। इसमें लोकजीवन के विविध आयामों के साथ ही उनके जीवन जीने की पद्धतियाँ, आचार-विचार, रीति-रिवाज, रुढि-परंपराएँ, मान-मनौतियाँ, विधि-विधान, टोने-टोटके, तीज-त्योहार, उत्सव-पर्व, लोकविश्वास, लोकसंस्कार, लोकप्रथा, लोकभ्रम, लोकश्रद्धा, लोकोक्तियां, वाकप्रचार, कहावतें, मुहावरें, पहेलियाँ, लोककथा, लोकगीत, लोककला, लोकनाटय, लोकनृत्य आदि ही नहीं, बल्कि परंपरागत व्यवसाय तथा ऋतु, नक्षत्र एवं देवी-देवताओं संबंधी विविध धारणाएँ एवं आस्थाएँ आदि सब कुछ आता है। इसलिए लोकसाहित्य उस आकाश की तरह व्यापक एवं विस्तृत बन गया है , जो कहीं से भी दृष्टिगोचर होता है ।

Folklore इस अंग्रेजी शब्द के लिए हिंदी एवं मराठी में अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं। जिनमें लोकवार्ता, जनवार्ता, लोकज्ञान, लोकयान, लोकविद्या, लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य

Scanned by CamScanner

आदि को शामिल किया जा सकता है । वैसे तो अंग्रेजी का Folklore यह शब्द लोकवार्ता एवं जनवार्ता के रूप में ही शब्दकोशों में पाया जाता है। परंतु इसका अर्थ व्यापक है। लोकसाहित्य के लिए विद्वानों ने Folkliterature शब्द का भी प्रयोग किया है । जिसमें लोक एवं जन के शब्दाविष्कारों से निर्मित साहित्य को शामिल किया जाता है । 'लोकसाहित्य' यह शब्द 'लोक' + 'साहित्य' इन दो शब्दों के योग से बना है । जिसका स्थूल अर्थ है - लोक के द्वारा लोक के लिए रचा गया सोहित्य। लोकसाहित्य में प्रयुक्त इन दो शब्दों के अर्थों को जब तक हम नहीं जान लेंगे, तब तक लोकसाहित्य क्या है ? इसका ज्ञान हमें नही होगा। अत: लोकसाहित्य में प्रयुक्त 'लोक' शब्द का अर्थ इसप्रकार से बताया जा सकता है । लोकसाहित्य में प्रयुक्त 'लोक' शब्द का अनेक विद्वानों ने 'जन' के रूप में अर्थ ग्रहण किया है । परंतु परंपरा एवं अनुसंधानों के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होता है । जिन विद्वानों ने 'लोक' शब्द का अर्थ 'जन' के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार यह जन तत्कालीन नगरों और ग्रामों में बसा हुआ जन है । परंतु अधिकांश विद्वान "लोक' शब्द का अर्थ आर्येत्तर जन से ही ग्रहण करते हैं, जो अधिकांश रुप में ग्रामों में बसा हुआ था। जो प्रकृति के सानिध्य में वास करता था और प्रकृति प्रदत्त जीवन यापन करता था। वह कृत्रिमता से अलिप्त और तत्कालीन नगरीय संस्कृति से दूर था। इस बात को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण दिए गए हैं । सिद्धांत कौमुदी में 'लोक' शब्द संस्कृति के लोकदर्शनों से आया हुआ बताया गया है ।" जिसका अर्थ होता है - देखना । अर्थात् देखनेवाला जनसमुदाय ही लोक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । प्राचीन काल में आर्य और आर्येतर जातियों के बीच संघर्ष होता था । इस संघर्ष में आर्येतर जातियाँ परास्त हो गई । आर्य जब उनके भूप्रदेश में रहने लगे तो वे देवी-देवताओं की कृपादृष्टि अपने पर बनी रहे। इसलिए यज्ञविधि करने लगे थे। इस यज्ञविधि को देखने के लिए आर्येत्तर जातियाँ आती थी । ऋग्वेद में 'सोमयाग यज्ञ' अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है । इसी सोमयाग यज्ञ का पश्चिमी विद्वान मिशेल ने इस प्रकार वर्णन किया है - "सोमयाग यह लोकप्रिय उत्सव था। इस उत्सव में भाग लेने वाले कवि, कविता अर्थात् ऋचाएँ गाके एवं करके दिखाते थे । उनकी इन ऋचाओं के आधार पर गवई सामगायन करते थे । छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि तालस्वर में गाने वाले गायकों को देखने के लिए साधारण लोक उत्सुक रहा करते थे ।" इन वर्णनों से स्पष्ट है कि आर्यों के द्वारा की जाने वाली यज्ञविधि को देखने के लिए साधरण लोक यानी आर्येतर लोक उपस्थित रहते थे । अत: यहाँ पर लोक शब्द का अर्थ उन सभी लोगों के अर्थ में नहीं है, जो नगरों एवं ग्रामों रहता था । बल्कि जो लोग अधिकतर ग्रामों , जंगलों, पहाडों में रहा करते थे और जो अनार्य कहलाए जाते थे; ऐसे ही साधारण लोगों के समूह के लिए 'लोक' संज्ञा का प्रयोग

Scanned by CamScanner

हुआ है। ऋग्वेद, महाभारत, भगवतगीता, पाणिनि का अष्टाध्यायी, भरत का नाट्यशास्त्र आदि अनेक ग्रंथों में लोक शब्द का प्रयोग पाया जाता है । इससे लोक शब्द की व्यापकता एवं इसका संकेत अर्थ समझ में आ जाता है ।

हिंदी के अनेक विद्‌वानों ने लोकसाहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान किया है। जिनमें डॉ. कुंजबिहारी दास, डॉ. हजारीप्रसाद दृविवेदी, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. मुजुमदार, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. विद्या चौहान, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. दुर्गाप्रसाद सिंह, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ. श्याम परमार, डॉ. रवींद्र भ्रमर, डॉ. श्रीराम शर्मा आदि अनेक विद्‌वानों की गिनती होती है । इन सभी विद्‌वानों ने लोकसाहित्य का गहन अध्ययन करके अनेक तथ्य बाहर निकाले हैं। डॉ. हजारीप्रसाद दृविवेदी के अनुसार "लोक' शब्द का अर्थ इसप्रकार है - "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली समग्र जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सीधे, सरल और अकृत्रिम जीवन व्यवहार के अभ्यस्त होते हैं तथा परिष्कृत रुचि संपन्न व्यक्तियों की विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखनेवाली आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं।" इससे स्पष्ट है कि लोक का अर्थ यहाँ पर साधारण जन के रूप में अभिव्यक्त हुआ है । ये साधारण जन या लोक प्राकृतिक जीवन जीनेवाले हैं और परिष्कृत तथा सभ्य समझे जाने वाले लोगों के लिए आवश्यक वस्तुएँ बनाने का कार्य करते हैं। इन्हें ही लोक की संज्ञा दी गई है । डॉ. कुंजबिहारी दास ने भी लोक शब्द का विशेष अर्थ इसप्रकार बताया है - "The people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences ." अर्थात् वे लोग जो कमाधिक मात्रा में आदिम या अपरिष्कृत परिस्थितियों में रहने वाले होते हैं और कृत्रिमता के प्रभाव क्षेत्र से दूर होते हैं । उन्हें ही लोक की संज्ञा दी जा सकती है । इससे भी यह स्पष्ट होता है कि 'लोक' शब्द का अर्थ उन लोगों के संदर्भ में नहीं है, जो सुसस्कृंत, परिष्कृत, रुचिसंपन्न थे, बल्कि जो इन लोगों एवं परिष्कृत समाज से दूर रहते थे और अकृत्रिम या प्रकृतिप्रदत्त जीवन जीते थे ; उन्हें ही लोक कहा जाता है । डॉ. सत्येंद्र के शब्दों में "लोक' मनुष्य समाज का वह वेग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना या अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा में जीवित रहता है।" यहाँ भी यह बात स्पष्ट होती है 'लोक' का अर्थ आभिजात्य, शास्त्रीय ज्ञान रखनेवाला या पांडित्य से युक्त समुदाय के रूप में नहीं है । डॉ. श्रीराम शर्मा भी लोक के संदर्भ में लिखते हैं कि "लोक' शब्द उस विशेष जन-समूह का वाचक है जो साज-सज्जा, सभ्यता, शिक्षा परिष्कार आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के

Scanned by CamScanner

अवशेषोंयुक्त परिधि को समाविष्ट करता है ।" उपर्युक्त सभी विद्वानों के लोक संबंधी विचारों को देखने के बाद "लोक' के संदर्भ में कुछ बातें सामने आती हैं, जिनका अवलोकन करना जरुरी है । परंपरागत जीवन जीने वाले, प्रकृति से रिश्ता रखने वाले , कृत्रिमता से दूर तथा आदिम अवस्था के अवशेषों से युक्त साधारण लोगों के समुदायों को लोक कहा जाता है । ये अशिक्षित एवं शास्त्रों तथा पांडित्य प्रकाश से अलिप्त होते हैं । ये अधिकतर ग्रामों, पहाडों, जंगलों, बियाबानों तथा दुर्गम घाटियों निवास करने वाले होते हैं । इनके अपने रीति-रिवाज, विश्वास-मान्यताएँ , परंपराएँ अन्यों से कुछ अलग ही होती है । ये अनार्य कहलाए जाते है । ऐसे ही लोगों के समुदायों के लिए 'लोक' संज्ञा दी गई है ।

दूसरा शब्द है - साहित्य । 'साहित्य' शब्द के शब्दकोशों में अनेक अर्थ दिए हैं । जिनमें सहित या साथ होने dk भाव, एक साथ होना, रहना या मिलना, किसी भाषा अथवा देश के उन सभी (गद्य और पद्य) ग्रंथों, लेखों आदि का समूह या सम्मिलित राशि, किसी विषय, कवि या लेखक से संबंध रखनेवाले सभी ग्रंथों और लेखों आदि का समूह इत्यादि । परंतु लोकसाहित्य में प्रयुक्त 'साहित्य' शब्द का अर्थ इनसे थोडा-सा भिन्न एवं व्यापक है । संस्कृत शब्दकोश में साहित्य का एक अर्थ साधन-सामग्री भी दिया है। अत: लोकसाहित्य में प्रयुक्त 'साहित्य' शब्द का अर्थ साधन- सामग्री विशेष के रूप में लिया जा सकता है। चूँकि लोकसाहित्य के अंतर्गत आनेवाला साहित्य ग्रंथों, लेखों के रूप में लिखित न होकर, अलिखित एवं मौखिक रूप में प्रचलित है । अत: साहित्य शब्द का अर्थ उतना नहीं लेना चाहिए जितना कि आकाश अपनी आँखों से दिखाई देता है । दृष्टि से परे भी अनंत आकाश होता है जिसे हम देख नहीं पाते। वैसे ही साहित्य शब्द का अर्थ शब्दश: न लेते हुए, उन तमाम क्रियाकलापों एवं बातों के साथ ग्रहण करना चाहिए जो लोक जीवन से संबंधित होती हैं । इसमें केवल लोककथाएँ, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्तियाँ, वाकप्रचार, कहावतें, मुहावरें, पहेलियाँ, लोककलाएँ आदि ही शामिल नहीं है, बल्कि लोकजीवन के परंपरागत व्यवसाय, रुढ़ि-परंपराएँ, आचार-विचार, व्रत-उपवास, धारणाएँ, आस्थाएँ, संस्कार, मान-मनौतियाँ, उत्सव-पर्व, तीज-त्योहार, टोने-टोटके, लोकनृत्य, लोकसंगीत आदि सबकुछ इसके अंतर्गत आता है। परिणाम स्वरुप 'साहित्य' शब्द का अर्थ भिन्न एवं व्यापक बन गया है। 'लोक' और 'साहित्य' इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त संकेतार्थों को देखने के बाद लोकसाहित्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य यानी उन लोगों के द्वारा रचा गया मौखिक या अलिखित साहित्य जो सभ्यता, परिष्कृतत:, पांडित्यत:, शास्त्रीयता, शिक्षा और आभिजात्य जीवन पद्धति से दूर रहनेवाले लोगों के द्वारा रचा गया है। ये लोग अधिकतर ग्रामों, पहाडों, दुर्गम घाटियों, जंगलों, वनों और बियाबानों में निवास करते थे । जिनमें

Scanned by CamScanner

आदिमयुग के अवशेष निहित थे । जो परंपरागत जीवन यापन करते थे । ऐसे ही लोगों के समूह के द्वारा रचा गया एवं मान्यता प्राप्त साहित्य लोकसाहित्य कहलाता है। जिसमें उनके जीवन की विविध बातों के साथ ही उनके क्रियाकलापों का भी समावेश होता है। इन लोगों के द्वारा मुखरित साहित्य स्वाभाविक रुप से पीढसी-दर-पीढसी संक्रमित होता रहा है । समय के अनुसार इसमें अनेक घट-जोडभी होते रहे हैं । परंतु आज भी यह उस अजस्त्र धारा के समान प्रवाहित है, जो कभी खत्म नहीं हो सकती । लोकसाहित्य की इस महान परंपरा को जतन करने एवं पीढसी-दर-पीढ़ी संक्रमित करने का श्रेय आदिम अवशेषों से युक्त जीवन जीने वाले, पीछडे, नगरीय सभ्यता से कटे हुए, प्रकृति के सानिध्य में निवास करने वाले लोगों को ही जाता है । इन्होंने ही इस परंपरा को अक्षुण्ण रखा है । यह बात अलग है कि आजकल इन लोगों के जीवन में समय के अनुसार परिवर्तन आने लगा है । ये नगरीय सभ्यता एवं शिक्षा में विश्वास करने लगे हैं । अतः इनके द्वारा मुखरित साहित्य अब किताबों में प्रकाशित होने लगा है । परंतु लोकसाहित्य का मूल आदिम एवं पीछडे समुदायों में था और आज भी उनमें ही दृष्टिगोचर होता है। लोकसाहित्य की परंपरा को बरकरार रखने में भी इन्हीं लोगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसलिए लोकसाहित्य की परंपरा अजस्त्र रूप में प्रवाहित होती रही है ।

लोकसाहित्य का स्वरूप -

लोकसाहित्य में समाविष्ट 'लोक' और 'साहित्य' इन दो शब्दों के संकेतार्थों के समझने के बाद लोकसाहित्य का स्वरुप का स्पष्ट हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य वह साहित्य है जिसमें लोकजीवन से संबंधित सभी शब्दाष्किार, क्रिया-कलाप, रुढ़ि-परंपराएँ, विश्वास-मान्यताएँ, तीज-त्योहार, उत्सव-पर्व, आदि से संबंधित सभी बातें शामिल होती हैं। इसमें परंपरागत लोकजीवन में निहित लोकभ्रम, लोकोक्तियाँ, आचार-विचार, भाव-भावनाएँ, विधि-विधान, व्रत-उपवास, देवी-देवताओं के संदर्भ में निहित आस्थाएँ एवं धारणाएँ, तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके तथा वनस्पति, नक्षत्र, खनिज, पशु-पक्षी आदि संबंधी ज्ञान, विविध कलाएँ, खेल, कथाएँ, गीत, नृत्य, कहावतें, मुहावरें, पहेलियाँ, वाक्प्रचार आदि अनेक घटकों को शामिल किया जा सकता है । परंपरागत जीवन जीने वाले लोगों की जीवन पद्धतियाँ, पारंपरिक साधन-सामग्री जिनसे उनका जीवन आकार ग्रहण करता है वह साहित्य और उससे साकार होने वाली लोकजीवन पद्धति यानी लोकसाहित्य है। लोक जीवन में कितने ही शतकों से प्रचलित एवं प्रवाहित अनेक घटकों का समावेश लोकसाहित्य के अंतर्गत होता है । परंपरागत रुढियाँ, प्रथाएँ, व्यवसाय, कलाकौशल, विश्वास-मान्यताएँ, मौखिक शब्दाविष्कार आदि का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। लोकसाहित्य आदिमयुग से चला आ रहा है। इसका संक्रमण

Scanned by CamScanner

मौखिक रूप से स्वाभाविकत: ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक होता रहा है। समय परिवर्तन के साथ लोकसाहित्य में भी अनेक बदलाव होते रहे हैं । इसका रचियता अज्ञात होता है । लोकसाहित्य के घटक, विधि-विधान, रूढि-प्रथाएँ, कथाएँ, गीत, कहावतें, पहेलियाँ, शब्द, वाक्प्रचार, संकेत, लोकाचार आदि बातों का रचियता अज्ञात होता है। ये किसने निर्माण किया या इसका रचियता कौन है ? इस बाबत कहना मुश्किल है । परंपरा के अनुसार ये बातें स्वीकार की जाती हैं । उनका उपयोग किया जाता है और अगली पीढ़ी तक उन्हें पहुँचाया जाता है । अगली पीढसी तक आते-आते इनमें से कुछ घटता है और कुछ नया जुडस्ता भी है । या कह सकते हैं कि लोकसाहित्य का विकास होता रहता है। अत: लोकसाहित्य की परंपरा इसी तरह से समय के थपेडों को झेलती हुई आगे बढस्ती रहती है। लोकसाहित्य वस्तुरुप, शब्दरुप, कल्पनारुप, दृश्यरुप और जीवन जीने की पद्धति आदि किसी भी रुप में निहित हो सकता है । इस संदर्भ में पाश्चात्य विद्वान मारियस बार्डो का कथन है कि "लोकजीवन में निहित पारंपरिक व्यवसाय ज्ञान, कौशल, रूढ़ि-प्रथा, मौखिक परंपरा से प्रचलित गीत, कथा, लोकोक्ति, नृत्य-खेलगीत और उत्सव आदि बातों का समावेश लोकसाहित्य के अंतर्गत किया जा सकता है।" दूसरे विद्वान सर जॉर्ज लॉरेन गॉम ने लोकसाहित्य का स्वरुप बताते हुए लिखा है कि "आदिम युग से प्रवाहित रीति-रिवाज, विश्वास, पारंपरिक कथन, लोककथा, लोकगीत, स्थानीय कथा, विधि-विधान, उत्सव, भिन्न-भिन्न खेल, जादूटोना, जोतिष, परंपरागत क्रियाएँ, टोने-टोटके, भ्रम, लोकोक्ति आदि का समावेश लोकसाहित्य में ही होता है । वर्तमान समाज जीवन में ये विश्वास, रीति-रिवाज, रुढिस्-प्रथा, लोकविश्वास सजीवावेशषों के रुप में रहते हैं। इन सभी घटकों का अध्ययन लोकसाहित्य के क्षेत्र में ही किया जाता है ।" हिंदी के विद्वान डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने भी लोकसाहित्य के संदर्भ में लिखा है कि ""ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति जो लोगों द्वारा युगों से साधना में समाविष्ट रहती है । जिसमें लोकमानस का प्रतिबिंब रहता है वह लोकसाहित्य माना जाता है ।" इससे स्पष्ट है कि लोकसाहित्य युगों से चला आ रहा है। इसमें लोकमानस के जीवन का प्रतिबिंब निहित होता है। इसमें लोकजीवन के सभी शब्दाविष्कारों को शामिल किया जा सकता है । डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोकसाहित्य के संदर्भ में लिखते हैं कि" "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली जनता की आशा-निराशा, हर्ष-विशाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है उसे लोकसाहित्य कहते हैं।" लोकसाहित्य की निर्मिती भले ही किसी व्यक्ति मानस द्वारा हुई हो । परंतु जब वह समूह को पंसद आती है, तभी वह सामूहिक बन जाती है और इसका प्रचलन भी समूह के द्वारा ही होता है । अगर वह समुदायों को पसंद नहीं आती है तो उसका नष्ट हो जाना तय है । अत: लोकसाहित्य का निर्माण

Scanned by CamScanner

लोकजीवन में होता है और लोकसाहित्य से ही लोकजीवन को नया आकार प्राप्त होता है । इससे ही अगली पीढ़ी को जीने के मार्ग मिलते हैं । परंपरा लोकसाहित्य का प्रमुख तत्व है । यह मुख्यत: मौखिक रुप में होती है । यह केवल शब्दाविष्कारों तक ही सीमित नहीं होती , बल्कि लोकजीवन के अनेक घटकों में यही परंपरा निहित रहती है । लोकसाहित्य लोकसमुदायों का होता है। उसमें व्यक्तित्व का अभाव रहता है । लोकजीवन का एकाध तत्त्व, परंपरा, प्रथा, रुढि, आचार-विचार लोकसमूहों से स्वीकार करके उसे अगर मान्यता मिलती है तो ही उसका लोकसाहित्य के अंतर्गत समावेश होता है । लोकसाहित्य का प्रचलन प्रमुखत: अशिक्षित, असभ्य, असंस्कृत, नगरीय संस्कृति एवं सभ्यता से दूर वास करनेवाले ग्रामीण लोक जीवन में रहता है। इस संदर्भ में मॅक्सिम गार्की कहते हैं कि "लोकसाहित्य इन लोगों की सृजनात्मक शक्ति का सुंदर प्रतीक है।" लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का एक पहलू है। लोकजीवन से ही लोकसंस्कृति को अनेक पहलू प्राप्त होते हैं । लोकसाहित्य का निर्माण एवं प्रचलन लोकजीवन में ही होता है। इसी कारणवश लोकसंस्कृति के विकास में लोकसाहित्य साझेदार बनता है । लोकसाहित्य लोकसमूहों के जीवन जीने का अंग होता है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य लोकजीवन के द्वारा निर्मित, प्रचलित एवं अभिव्यक्त मौखिक साहित्य होता है । इसमें लोकजीवन के अनेक पहलुओं देखा जा सकता है। लोकमानस के विविध भाव-तरंगों के साथ ही आचार-विचार, रुढ़ि-प्रथाएँ, लोकश्रद्धा, लोकविश्वास एवं मान्यताएँ, लोकभ्रम, विधि-विधान, व्रत-उपवास, कथा, गीत, नृत्य, संगीत, कला आदि अनेक घटकों का लोकसाहित्य के अंतर्गत समावेश किया जा सकता है । लोकजीवन का स्पष्ट प्रतिबिंब लोकसाहित्य में होता है ।

Scanned by CamScanner